पुस्तक समीक्षा

शिक्षा में 'अनुभव से सीखना' के बोलबाले के बावजूद भारत में ऐसे दस्तावेजों का अभाव नजर आता है जो सही मायने में शैक्षिक प्रयोगों के अनुभवों पर पुनर्चिन्तन से तैयार किए गए हों। समीक्षित पुस्तक 'जश्न-ए-तालीम' होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम पर तैयार ऐसा दस्तावेज है जो केवल अनुभव का दस्तावेजीकरण भर नहीं है बल्कि इन अनुभवों को शिक्षा और राजनीति के व्यापक फलक से जोड़कर देखता और उनका विश्लेषण करता है।

निरंजन सहाय

बदलाव के स्वप्न का करुणान्त

शिक्षा के चिर-परिचित संसार में एक शोर इस कदर कहर बरपाता है कि बच्चे खासे उदास और बोझिल हो जाते हैं तो शिक्षक दम्भी। दूसरी तरफ अभिभावक भी बच्चे के भविष्य को लेकर चिंतित होने लगते हैं। वह शोर है, ज्यादा से ज्यादा अधुनातन सूचनाओं से बच्चों को लैस करना। बेशक इस प्रक्रिया में आमतौर पर रटने की क्रिया पर जितना बलाघात होता है, उतना ही समझ को लेकर निरुत्साह। साथ ही इसमें स्थानीय वातावरण की आपराधिक स्तर की उपेक्षा भी स्वभावतः शामिल होती है। जब कि सच्चाई इससे उलट है। दरअसल बच्चे जब बड़े होते हैं, उस समय तक स्कूली जीवन में प्राप्त की गई सूचनाएं दशकों पुरानी हो चुकी होती हैं। जब कि सूचनाओं का अद्यतन संसार तेजी से बदलता रहता है। दरअसल बच्चे समाज की बेहतरी में और भौतिक रूप से सबलता में तभी सफल भूमिका निभा सकते हैं, जब उनमें समझ का कौशल उच्च स्तर तक विकसित हो और परिवेश के प्रति संवेदनशीलता का आग्रही मन उन्हें सक्रिय बनाए रखे। शैक्षिक दुनिया में इस नजरिए के आलोक में एक उल्लेखनीय प्रयास किया गया, जिसे 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' के रूप में व्यापक लोकप्रियता मिली। पर बदलाव के प्रति असंवेदनशील और यथास्थितिवादी राज्य संस्थाओं ने राजनैतिक आग्रहों के मद्देनजर

निरंजन सहाय

समकालीन शैक्षिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर निरंतर लेखन में रत निरंजन सहाय आजकल में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में एसोशिएट प्रोफेसर हैं।

सम्पर्क

एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002 उत्तर प्रदेश

इस रचनात्मक यात्रा को विराम लगा दिया। इतना ही नहीं, लोकतांत्रिक आदर्शों का मखौल उड़ाते हुए विराम के पहले वजह बताना तक मुनासिब नहीं समझा गया। 1972 से शुरू होने वाली यह यात्रा अबाध गति से 2002 तक चली। बदलाव के इस स्वप्न के करुणान्त की यात्रा का लेखा-जोखा 'जश्न-ए-तालीम' किताब में पेश किया गया है। सुशील जोशी की यह किताब उन लोगों के लिए जरूरी संदर्भ है जो शिक्षा को जीवन जगत में परिवर्तन का रचनात्मक माध्यम मानते हैं।

उन्नीस अध्यायों में विभक्त इस किताब में शैक्षिक सफरनामे की अवधारणा, प्रेरणा, यात्रा, पाठ्यक्रम, अध्यायों की संरचना, उनका विवरण, परिवेश के अनुरूप वैज्ञानिक प्रयोगशाला सामग्री निर्माण, शिक्षक अभिमुखीकरण, नवाचार, मूल्यांकन इत्यादि बिन्दुओं को शामिल किया गया है। दुनिया के अनुभव हमें बताते हैं कि कोई भी श्रद्धा अंततः हमें अंधा भी बनाती है। किताब सवाल करने, शंका करने की रचनात्मक विकास प्रक्रिया को शिक्षा का अनिवार्य संदर्भ बनाने की जरूरत को खासतौर पर रेखांकित करती है। विज्ञान शिक्षा के क्रांतिकारी अध्ययन-अध्यापन पर आधारित इस पुस्तक की शुरुआत में ही एक चीनी कहावत का उल्लेख किया गया है, जो पुस्तक की मंशा को साफतौर पर रेखांकित कर देता है- 'मैंने सुना......भूल गया, मैंने देखा.......याद रहा, मैंने करके देखा......समझ गया।' जाहिर-सी बात है, पुस्तक कागद की लेखी की बजाय न सिर्फ आंखिन देखी के प्रति अपने विश्वास को व्यक्त करती है, अपितु करके देखने के आनंद के लिए प्रेरित भी करती है। कहना न होगा यह नवाचार कई अर्थों में विशिष्ट अनुभव था। यहां पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर लिखी कुछ पंक्तियां प्रसंगवश देखी जा सकती हैं- 'स्कूली शिक्षा में यह नवाचार का एक अनोखा कार्यक्रम था। यह एक शैक्षणिक जश्न था जिसमें अनगिनत लोगों ने मिलकर शिक्षा और खासकर विज्ञान शिक्षा को बच्चों के लिए एक सार्थक व आनन्ददायी अनुभव बनाने के प्रयास किए। साथ ही इसने समूचे देश में शिक्षा के क्षेत्र में सृजनात्मक ऊर्जा को मुक्त किया और उसे एक मंच दिया। हो.वि.शि.का. में जानकारी के विस्फोट की बजाय विज्ञान करने व अवधारणा के विकास को पाठ्यक्रम की बुनियाद बनाया गया। कोशिश यह थी कि बच्चों को स्वतंत्र सीखने वाले बनाया जाए और उन्हें उन तौर-तरीकों से लैस किया जाए जो नए-नए सवालों व समस्याओं की खोजबीन को आगे बढ़ाने में सहायक हो।'

एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसमें पढना-लिखना साधना और तपस्या जैसी भारी-भरकम अवधारणा का विषय हो, वहां ज्ञानार्जन को आनन्द का विषय बनाया जाना उन लोगों को नागवार गुजरा जो ज्ञान पर खास वर्ग की इजारेदारी के समर्थक थे। किताब की शुरुआत में ऐसे लोगों की हिमाकत पर टिप्पणी है, '3 जुलाई 2002 शिक्षा के इतिहास में एक काला दिवस है। इस दिन मध्य प्रदेश सरकार ने शिक्षा में नवाचार के उस कार्यक्रम को बन्द करने का निर्णय लिया था जो होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (हो.वि.शि.का.) के नाम से देश-विदेश में मशहूर रहा है।' 'एक अनोखी पहल' नामक इस अध्याय में होशंगाबाद शिक्षण की उन विशिष्टताओं का उद्घाटन किया गया है, जिसमें पारंपरिक वैज्ञानिक चेतनाविहीन विज्ञान शिक्षण के समानान्तर कैसे होशंगाबाद शिक्षण का अवधारणात्मक स्वरूप बना और रूपाकार ग्रहण किया। अध्याय बताता है कि 1978 में दो स्वैछिक संस्थानों 'किशोर भारती' और 'फ्रेंड्स रूलर सेंटर' ने जब सरकारी मिडिल स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के विशेष कार्यक्रम की अनुमति मांगी तब तत्कालीन लोक शिक्षण संचालक डॉ. बी.डी. शर्मा ने तमाम आपत्तियों को दरकिनार करते हुए अनुमति दी। फिर मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के सोलह स्कूलों के शिक्षक, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च के वैज्ञानिक, ऑल इण्डिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन के सदस्य तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक साझे रूप से इस दिशा में सक्रिय हुए। इतना ही नहीं कारीगरों- दस्तकारों, किसानों, स्वैच्छिक सामाजिक कार्यकर्ताओं, इंजीनियरों, डॉक्टरों ने भी अभियान में शिरकत की। प्रायः शिक्षक शिक्षा को एकमार्गी उद्यम मानने की भूल करते हैं। इससे अलग अभियान में शामिल हर व्यक्ति सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में भागीदार रहा। कक्षा में शिक्षकों ने न केवल साथी और मार्गदर्शक की भूमिका निभाई अपितु तोतारटंत पद्धति को कक्षा से बाहर भी किया। 1978 में अभियान का विस्तार सोलह स्कूलों से बढ़ाकर पूरे होशंगाबाद जिले के मिडिल स्कूलों तक कर दिया गया। जब अभियान पर विराम लगाया गया तब अभियान 15 जिलों के 800 से ज्यादा स्कूलों में चल रहा था। कुछ और बातों की ओर भी अध्याय इशारा करता है, मसलन बच्चों की जिज्ञासा को उचित मंच देने के लिए सवालीराम जैसे मंच का निर्माण किया गया, कैसे पाठ्य-सामग्री को विविध प्रयोगों से गुजरकर हासिल किया गया, होशंगाबाद योजना के तीस साल के इतिहास में औपचारिक रूप से प्रशिक्षित लोगों का प्रायः अभाव रहा इत्यादि। 'प्रमुख पड़ाव' शीर्षक अध्याय में होशंगाबाद कार्यक्रम के प्रमुख अनुभवों-निर्णयों को काल क्रमानुसार अविकल रूप में प्रस्तुत किया गया है। घटनाओं को 1972 से 2002 तक के कालखण्ड में नियोजित किया गया है। तीसरा अध्याय है, 'अकादमिक प्रेरणा-स्रोत'। अविभाजित रूस में पचास के दशक में स्पूतनिक का प्रक्षेपण वैज्ञानिक दुनिया के लिए एक अभूतपूर्व घटना थी। इस आलोक में दुनिया भर में विज्ञान शिक्षा को लेकर चिंतन-मनन आरंभ हुआ। भारत में साठ के दशक में इस दिशा में शिद्दत से कुछ करने की जरूरत महसूस की गई। एन.सी.ई.आर.टी.

द्वारा समर्थित एक समूह ऑल इण्डिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन की अनोखी पुस्तक 'फिजिक्स थ्रू एक्सपेरिमेंट्स' की रचना इसी आलोक में देखी जा सकती है। जहां पुरानी पुस्तकों में बल अधिक-से-अधिक जानकारियों पर था, वहीं इस नई पुस्तक में बल समझ के औजारों को विकसित करने पर था। अध्याय में की गई टिप्पणी ध्यान देने लायक है- 'ज्ञान इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि किसी भी बच्चे के दिमाग में इसे ठूंसा नहीं जा सकता। बच्चे की सीमाएं हैं, उसके आयु समूह की सीमाएं हैं। इसलिए बच्चों को ज्ञान हासिल करने के तरीके सिखाए जाने चाहिए, ज्ञान हासिल करने के औजारों में माहिर बनाना चाहिए।' पर दुर्भाग्यवश एन.सी.ई.आर.टी. ने उस वक्त इस रचनात्मकता को तवज्जो नहीं दी। इस अभियान से जुड़े मशहूर वैज्ञानिकों यशपाल और वी. जी. कुलकर्णी ने इसी पुस्तक पर आधारित और जीव विज्ञान एवं रसायन विज्ञान को शामिल करते हुए एक नई किताब बनाई- प्रायोगिक पदार्थ विज्ञान। अपनी कोशिशों के बल पर बंबई नगर निगम के स्कूलों में इसे तीन सालों के लिए लागू करवाने में वे सफल भी हुए। इस अवधारणा की अगली कड़ी थी-'बाल वैज्ञानिक' किताब, जिसे होशंगाबाद कार्यक्रम में 1972 में शामिल किया गया। अध्याय विस्तार से इस यात्रा की कहानी कहता है। अध्याय का खूबसूरत पक्ष है- उस वैचारिकी का प्रभावी विश्लेषण जहां इस तरह के संकल्पों की गाथा बनती और परवान चढ़ती है। चौथे अध्याय में पाठ्यक्रम और विषयवस्तु का विश्लेषण है। अध्याय बताता है कि विषयवस्तु का चयन और विकास इस तरह किया गया कि बच्चों को इन चीजों का अधिक से अधिक अभ्यास कराया जाए। आठवीं तक तैयार होने वाले विज्ञान पाठ्यक्रमों का व्यावहारिकता के आधार पर अनेक परिवर्तन-परिवर्धन हुए। बाल वैज्ञानिक के 1978 से 2000 तक के तीन संस्करणों के विकास में इसे आसानी से समझा जा सकता है। पांचवें अध्याय में विस्तार से 'बाल वैज्ञानिक' के अध्यायों की उस संरचना पर बल दिया गया है, जिसमें अध्ययन के दौरान खुद खोज करने की प्रतिबद्धता का विश्लेषण है। छठे अध्याय में कक्षा छः, सात, आठ (खण्ड 1, खण्ड 2) अध्यायों के सारांशों का सर्जनात्मक प्रस्तुतिकरण हुआ है। पुस्तक का सातवां अध्याय बेहद उल्लेखनीय है, जिसका शीर्षक है-'बदलती बाल वैज्ञानिक'। इस अध्याय में होशंगाबाद कार्यक्रम की आधार पुस्तक 'बाल वैज्ञानिक'

लेखक : सुशील जोशी
प्रकाशक : एकलव्य, भोपाल
मूल्य : 160 रुपए, पृष्ठ-396

की रचना एवं परिवर्धन की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का विश्लेषण किया गया है। अध्याय बताता है, कार्यक्रम के प्रसार की जिला स्तरीय अनुमति के बाद सबसे पहले 'बाल वैज्ञानिक' और कार्डों में उपलब्ध अध्यायों के अलावा नए अध्याय तैयार कर कक्षा 6, 7 एवं 8 में वितरित किए गए। फिर 1978 से 1980 के बीच 'बाल वैज्ञानिक' का पहला संस्करण तैयार हुआ। 1978 में कक्षा 6, 1979 में कक्षा 7 और 1980 में कक्षा 8 में 'बाल वैज्ञानिक' के पहले संस्करण को लागू किया गया। इसके बाद दो संशोधित संस्करणों का प्रकाशन हुआ। अध्याय में फीड बैक के स्रोत, प्रथम संशोधन, दूसरा संशोधन के माध्यम से उस पूरी प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जिसे व्यावहारिक अनुभवों और बदलाव की उत्कृष्ट आकांक्षा के आलोक में हासिल किया गया।

किताब का एक अन्य अध्याय 'सवालीराम' कार्यक्रम की विलक्षणता के बेहद विशिष्ट पहलू का खुलासा करता है। जब बच्चों को समझ का चस्का लगता है, तब सवालों के अनेक क्षितिजों का उदय भी होता है। 'सवालीराम' की अवधारणा इसी से संबद्ध है। सवालीराम एक काल्पनिक पात्र था, जिसे बच्चे पत्र लिखते थे। वे प्रश्न पूछते थे, पाठ्यकम संबंधी समस्याएं बताते थे, कभी-कभी शिक्षक की शिकायत भी करते थे। यह कार्यक्रम कितना लोकप्रिय था, इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि अनेक होशंगाबाद के पूर्व छात्र सवालीराम के संपर्क में रहे। जब पत्रों के जवाब का दायित्व सरकारी शिक्षा विभाग निभाने में असमर्थ रहा, तब पहले इस दायित्व का निर्वहन किशोर भारती ने निभाया फिर एकलव्य ने। बच्चों की जिज्ञासा का समाधान स्रोत व्यक्ति करते थे। पर सवालीराम की अवधारणा का संभावना के अनुरूप लाभ नहीं उठाया जा सका। लेखक की टिप्पणी गौरतलब है- 'कुल मिलाकर अनुभव यह रहा कि सवालीराम एक उपयोगी मंच बना मगर इस पर कभी इतना समय न लगाया जा सका कि इसकी पूरे गुंजाइश का लाभ मिल सके।'

पुस्तक का पंद्रहवां अध्याय है 'नवाचार और शिक्षकों की भागीदारी की तैयारी'। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की धुरी शिक्षकों पर टिकी थी। यह जानना दिलचस्प है कि शिक्षकों के नवाचार और भागीदारी में कौन से उल्लेखनीय पहलू थे। आमतौर पर पाठ्यपुस्तक वाचन को ही अध्यापन की इतिश्री समझने वाली परंपरा ज्यादा-से-ज्यादा कुछ उदाहरणों व रूपकों के प्रयोग को या फिर प्रश्नोत्तर लिखवा देने

तक अपना विस्तार करती है। लेकिन होशंगाबाद कार्यक्रम की संकल्पना में महज इतने भर से काम नहीं चल सकता था, क्योंकि इस कार्यक्रम में पहले ही तय कर लिया गया था कि, 'बच्चे स्वयं प्रयोग करेंगे, प्रयोग के अवलोकनों पर विचार-विमर्श करेंगे, निष्कर्ष निकालेंगे, निष्कर्षों की सामूहिक छानबीन होगी और अंत में बच्चों को अपने शब्दों में इन बातों को लिखना होगा।' हो.वि.शि.का. शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षकों को स्वयं सीखने की प्रक्रिया से जोड़ा गया, बकौल सुशील जोशी, 'जिन व्यक्तियों की अपनी सीखने की प्रक्रिया बाधित हो चुकी है वे विद्यार्थियों को सीखने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते।' इस दिशा में जिस दूसरी बात पर बल दिया गया वह थी, 'एक शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि उसे विषयवस्तु का गहरा ज्ञान हो। गहरे ज्ञान से तात्पर्य ढेर सारे शब्द, परिभाषाएं, सूत्र याद होने से नहीं है। उसे उस विषय के तार्किक क्रम का, विभिन्न विषयों के साथ उसके संबंध का, उस विषय में ज्ञान हासिल करने व समझने की विधियों का अन्दाज होना चाहिए।' इसके लिए विशेष प्रयास किया गया कि शिक्षक को खुद पर और बच्चों की क्षमताओं पर पूरा यकीन हो। सबसे अहम यह था कि प्रशिक्षण में शामिल किया गया कि शिक्षक यह कहने में बिल्कुल न शरमाएं कि 'नहीं आता', क्योंकि ऐसा कहना सीखने की दिशा में अगला कदम होता है। पुस्तक में विश्लेषणात्मक ढंग से कक्षा के अनुभवों, परीक्षा, कार्यक्रम के मूल्यांकन जैसे संदर्भों पर भी विचार किया गया है।

पुस्तक का अंतिम अध्याय है- 'उपसंहार'। प्रायः इस कार्यक्रम पर यह पूर्वग्रह चस्पा किया जाता है कि यह केवल 'करके सीखो' का पर्याय है। लेखक इसे खारिज करते हुए कहते हैं, 'करना' इस पूरे नवाचार का बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू होते हुए भी एक पहलू ही था। यानी सीखने की कई अन्य छवियां भी इसमें शामिल थीं, जिनमें कुछ पर समीक्षा के दौरान विचार भी किया गया। यह स्वीकार किया गया है कि कुछ विश्लेषण अभी भी बाकी हैं। उसी तरह अध्याय कुछ अन्य बातों का खुलासा भी करता है- हो.वि.शि.का. को किसी सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास नहीं किया गया, विचारधारा के अनेक निहितार्थों का आग्रह किया गया, किसी एक विचारधारा के प्रति भावुक समर्पण नहीं किया गया, किसी समाज में महज नवाचार महत्त्वपूर्ण नहीं होता दरअसल वह समाज भी महत्त्वपूर्ण होता है जिसमें नवाचार सक्रिय होता है, कार्यक्रम क्रियान्वयन में शिक्षा प्रशासन की भूमिका की समीक्षा करना भी उपयोगी होगा जो यहां नहीं की गई है, अफसाने में इस बात का जिक्र न के बराबर है कि बच्चे सीखते क्या थे इत्यादि।

कुल मिलाकर पुस्तक नवाचार के प्रति आग्रही शिक्षा प्रेमियों के लिए बेहद उपयोगी संदर्भ है। एक खटकने वाली बात का उल्लेख किए बिना नहीं रहा जा सकता, वह यह कि जिन बच्चों के प्रति यह कार्यक्रम समर्पित था उन्होंने जीवन जगत में क्या हासिल किया इसका कोई अध्ययन नहीं हुआ। कहना न होगा कि यदि ऐसा होता तो ऐसे प्रयोगों की सार्थकता और भी मजबूती से स्थापित होती। ◆

शिक्षा का समाजशास्त्र-I

आधुनिक शिक्षा के विकास पर केन्द्रित विशेषांक

पृष्ठ-64, मूल्य : 50 व्यक्तिगत; 60 संस्थागत

अथिति संपादक
अमन मदान

शिक्षा का समाजशास्त्र-II

शिक्षा और सामाजिक स्तरीकरण पर केन्द्रित विशेषांक

पृष्ठ-148, मूल्य : 120 व्यक्तिगत; 150 संस्थागत

मंगवाने के लिए संपर्क करें :

शिक्षा विमर्श, दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा, खो नागोरियन रोड, जगतपुरा, जयपुर-302025 राजस्थान

फोन : 0141-2750230, 2750310; ईमेल : shikshavimarsh@gmail.com